

## प्राचीन भारतीय न्यायिक व्यवस्था के स्रोत के रूप में स्मृतियाँ : एक अध्ययन

डॉ० प्रदीप सिंह

विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, टी०डी०पी०जी० कॉलेज, जौनपुर

धर्मशास्त्रों में सबसे अधिक प्राधिकारपूर्ण स्मृति मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति है, परन्तु प्राचीन भारत की विधि और न्याय-व्यवस्था के स्रोत के रूप में नारद स्मृति, वृहस्पति स्मृति और कात्यायन स्मृति भी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ हमने मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति पर परिचयात्मक चर्चा की है।

### मनुस्मृति-

यह मान्यता है कि हमारे पूर्वज स्वयंभुव मनु ने मानव जीवन तथा उसकी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था को पूर्णतः विनियमित करने के लिये मनुस्मृति की रचना की थी। मनुस्मृति की रचना के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्राधिकृत स्रोत मनुस्मृति का अध्याय-1 ही है, जिसमें यह उल्लिखित है कि मनु एकाग्रचित और सुखपूर्वक बैठे हुये थे कि उनके पास आकर महर्षिगणों ने इनसे यह निवेदन किया कि आप सब वर्गों और सम्पूर्ण जातियों के धर्मों के आदि से अन्त तक के ज्ञाता हैं, स्वयंभू, सम्पूर्ण वेदों, अग्निनष्टोमादि यज्ञों और ब्रह्मा को जानने वाले हैं, अतः आप हमें यह सब अवगत कराये। महर्षियों के निवेदन पर मनु ने इस जगत की उत्पत्ति का रहस्य बतलाया<sup>1</sup> और यह भी बतलाया कि ब्रह्मा ने इस शास्त्र को बनाकर स्वयंमुझे पढ़ाया और मैंने मरीचि आदि मुनियों को यह शास्त्र पढ़ाया<sup>2</sup> अब इस शास्त्र को महर्षि भृगु आपको सुनायेगे, क्योंकि उन्होंने यह सब मुझसे पढ़ा है।<sup>3</sup> मनु द्वारा इस प्रकार प्राधिकृत किये जाने पर महर्षि भृगु ने वहाँ उपस्थित ऋषियों से यह कहा कि स्वयंभुव मनु के वंश में और भी महात्मा तथा बड़े पराक्रमी, छः अन्य मनुओं ने भी अपनी-अपनी प्रजा को उत्पन्न किया। स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष्य और वैवस्वत मनु जैसे तेजस्वी अन्य मनुओं ने अपने-अपने समय में इस समस्त चराचर को उत्पन्न करके उनका पालन किया।<sup>4</sup> इस प्रकार स्वयं मनुस्मृति का अध्ययन करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयंभुव मनु ने मनुस्मृति में समाविष्ट आचार व्यवहार और प्रायश्चित के नियमों को ब्रह्मा से प्राप्त किया और उन नियमों को उन्होंने मरीचि, भृगु आदि महर्षियों को बतलाया और अन्त में महर्षि भृगु ने उसे संहिताबद्ध करके अन्य ऋषियों को बतलाया। मनुस्मृति, स्मृतिशास्त्रों में सर्वप्रमुख और संसार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आर्य-संस्कृति के प्राचीन आचार-विचार और चारों वर्गों तथा आश्रमों से सम्बन्धित सभी नियमों का उनमें समावेश है। यह ग्रन्थ निरा धर्मग्रन्थ ही नहीं, अपितु विशेष रूप से यह नीतिग्रन्थ भी है तथा आज भी इसकी मान्यता और उपयोगिता उतनी ही है, जितनी कि पुरातन युग में थी। हिन्दू धर्म सम्बन्धी विवादों में अब भी विधि-ग्रन्थ के रूप में इसके प्रमाण न्यायालयों में मान्य किये जाते हैं। मनुस्मृति न केवल प्राचीनतम है, अपितु यह राजशास्त्र, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके रचनाकार स्वयंभुव मनु ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद जैसे स्मृतिकारों का उल्लेख किया है।<sup>5</sup> वर्तमान

मनुस्मृति अपने गठन एवं सिद्धान्तों की दृष्टि से प्राचीन धर्म सूत्रों अर्थात् गौतम, बौधायन और आपस्तम्ब के धर्म सूत्रों से परवर्ती है। इसमें बारह अध्याय और कुल 2684 श्लोक हैं।<sup>1</sup> इसका सर्वप्रथम मुद्रण सन् 1813 ईद में हुआ था।<sup>7</sup> इस समय इसके अनेक संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हैं। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि, गोविन्दराज और कुल्लुक भट्ट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ. पी. वी. काणे के अनुसार मनुस्मृति का संकलन ईदपूर्व दूसरी शताब्दी तथा ईसा उपरान्त दूसरी शताब्दी के बीच कभी हुई होगी।<sup>8</sup> प्राच्यशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल का अभिमत है कि मनुस्मृति का संकलन पुष्यमित्र शुंग अथवा उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में हुआ।<sup>9</sup> डॉ. लक्ष्मीकान्त ठाकुर ने इस सम्बन्ध में अनेक मतों का परीक्षण करते हुए यह निष्कर्ष व्यक्त किया है कि मनुस्मृति का संकलन ईसा के 200 वर्ष पूर्व हुआ है।<sup>10</sup> यही अभिमत डॉ. पारस दीवान का भी है, जो प्राच्य और आधुनिक हिन्दू विधि के एक महान विद्वान हैं और वे मनुस्मृति के संकलन का युग ईसा से 200 वर्ष पूर्व मानते हैं।<sup>11</sup> महान विधि शास्त्री डी. एस. मुल्ला की सुप्रसिद्ध पुस्तक हिन्दू लॉ की प्रस्तावना में श्री एस. टी. देसाई ने मनुस्मृति के बारे में लिखा है कि “मनु की वर्तमान संहिता जिसका संकलन लगभग 200 ईदपूर्व किया गया था, एक लम्बे समय की अनुभूत आवश्यकता का प्रकट: उत्तर थी, क्योंकि धर्मशास्त्र युग के विधिक साहित्य ने ऐसी कोई कृति प्रस्तुत नहीं की थी, जो अपनी समस्त शाखाओं में विधि के सारांश के रूप में आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इसने श्रेष्ठ स्मृति एवं विधि के जलाशय का जो सर्वश्रेष्ठ और अत्यधिक प्राधिकारिक और प्रभावशाली रूप अर्जित कर रखा था, उसके दो प्रमुख कारण थे। एक तो यह कि इसका अपना एक पारम्परिक इतिहास था और दूसरा यह कि इसमें विद्यमान विधि के नियमों के क्रमबद्ध, निश्चयात्मक और

विश्वासप्रद संग्रह थे और इसने जनवर्ग को स्पष्ट, सरल और बोधगम्य भाषा में इन नियमों को उपलब्ध कराया था।<sup>12</sup> न केवल परचातवर्ती स्मृतियों में अपितु टीकाकारों द्वारा भी धर्म के ग्रहण पर बहुलतया मनुस्मृति को उद्धृत किया गया है।

### मनुस्मृति में प्रतिपादित विधि और न्याय-व्यवस्था के सिद्धान्त-

मनुस्मृति में विधि और न्याय-व्यवस्था के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना यहाँ की जा रही है। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय-व्यवस्था के इतिहास में सदैव से ही और मनुस्मृति के रचना काल से भी यह सिद्धान्त मान्य था कि “विधि राजाओं का भी राजा है।” मनुस्मृति इस सम्बन्ध में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि राजा विधि के अधीन है, वह विधि-निर्माता नहीं, अपितु विधि का प्रतिपादक है। मनुस्मृति इस सम्बन्ध में यह सिद्धान्त प्रतिपादित करती है कि राजा को शासन और विधि के प्रतिपालन की दैवी-शक्ति प्राप्त है। मनुस्मृति की रचना ब्राह्मण-धर्म के पुनरुत्थान के युग में हुई थी। ब्राह्मण समाज ने उस समय राजा का समर्थन प्राप्त किया और उसका साथ दिया। राजा की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए मनु ने कहा कि राजा को शासन करने के लिये ईश्वर ने भेजा है। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था को हम सदैव से ही दैवी-विधि और न्याय-व्यवस्था मानते आये हैं। इस

पृष्ठभूमि में इस प्रलोभन में आ जाना सहज ही था कि जो दैवी विधि और न्याय-व्यवस्था का प्रतिपालन करता है, वह स्वयं भी दैवी शक्ति से युक्त होता है। राजा की स्थिति सुदृढ़ करने की दिशा में एक दूसरा भी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि राजा को दण्डिक शक्ति प्राप्त है और वह अपनी दण्ड शक्ति द्वारा शासन करता है। मनु के अनुसार दण्ड ही समस्त समाज में संतुलन स्थापित करता है और व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। 'दण्ड' तो न्यायिक प्रक्रिया का एक परिणाम है और उसका प्रतिपूरक है। न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से ही दण्ड राजा की लौकिक शक्ति के एक अंग के रूप में कार्य करता है।<sup>13</sup> डॉ० पारस दीवान का अभिमत है कि मनुस्मृति की महत्वपूर्ण बात यह है कि जहाँ एक ओर राजा की महानता और शक्ति का पक्ष लिया गया है, वहीं दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्था में प्रथा और रूढ़ि के स्थान की अवहेलना भी नहीं की गयी है। मनु ने अर्वाचीन प्रथा और रूढ़ि का पालन करना सबके लिये अनिवार्य माना है। उनका आदेश है कि किसी भी विवाद पर निर्णय लेते समय राजा को प्रादेशिक, जातीय, श्रेणीय या कौटुम्बिक रूढ़ि को लागू करना चाहिये। धर्मशास्त्रों में वर्णित विधि के अट्ठारह विषयों के सम्बन्ध में कोई विवाद उठने पर राजा को दैवी विधि और न्याय-व्यवस्था तथा रूढ़ि को लागू करके निर्णय देना चाहिए। मनु ने रूढ़ि को स्थान दिया है, यद्यपि उनके टीकाकारों के बीच इस बारे में मतभेद है कि दैवी विधि और न्याय-व्यवस्था के प्रतिकूल रूढ़ि को मान्य किया जा सकता है अथवा नहीं।<sup>14</sup> डॉ० पारस दीवान का यह अभिमत है कि ब्राह्मण धर्म पुनरुत्थान के प्रवर्तक होने के नाते मनु ने कट्टरपंथी विचार और सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया है। स्त्री और शूद्र के प्रति उनके विचार कठोर थे। समाज में ब्राह्मणों को वे प्रमुख स्थान देते थे। यहाँ तक कि उनके अनुसार ब्राह्मण की स्वेच्छा से हत्या करने वालों के लिये कोई भी प्रायश्चित्त पर्याप्त नहीं है। ब्रह्म हत्या के पाप से कोई व्यक्ति मुक्त हो ही नहीं सकता। यदि शूद्र, ब्राह्मण कन्या से विवाह कर ले, तो मृत्यु के अतिरिक्त कोई अन्य दण्ड उसके लिये नहीं है।<sup>15</sup>

### याज्ञवल्क्य स्मृति-

याज्ञवल्क्य स्मृति के निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैव्य नहीं है, परन्तु डॉ० पी०वी० काणे के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति को हम ईदृपूद्द पहली शताब्दी तथा ईदृ के बाद तीसरी शताब्दी के बीच कहीं रख सकते हैं।<sup>16</sup> यह स्मृति मनुस्मृति से कहीं अधिक सुगठित पूर्ण और संक्षिप्त है। विश्वरूप और विज्ञानेश्वर जैसे महान और सुप्रसिद्ध टीकाकारों से लेकर नीलकंठ और उनके बाद के लेखकों ने इस स्मृति को विधि और न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित लोगों के लिये मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक उपयोगी बना दिया। डॉ० श्रद्धाकर सुपकार का अभिमत है कि विधि और न्याय व्यवस्था से संव्यवहार के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित है। याज्ञवल्क्य ने अपनी कृति को तीन भागों में विभाजित किया है। (1) आचार अर्थात् आचरण (2) व्यवहार अर्थात् विधि और न्याय व्यवस्था और (3) प्रायश्चित्त। 'व्यवहार' अध्याय में न्यायालय वादपत्र, प्रतिपाद पत्र, मौखिक और अभिलेखीय साक्ष्य और अग्नि-परीक्षा से

सम्बन्धित विशेष नियमों का व्यापक उल्लेख किया गया है।<sup>17</sup> याज्ञवल्क्य ऋषि शुक्ल यजुर्वेद की शाखा से सम्बन्धित थे और मिथिला के रहने वाले थे।<sup>18</sup>

### याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित विधिक सिद्धान्त-

याज्ञवल्क्य ऋषि ने इस सिद्धान्त को समर्थन नहीं प्रदान किया था कि शासन करने के लिये राजा को दैवी-अधिकार प्राप्त है। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि विधि सर्वोच्च है और राजा विधि के अधीन है। याज्ञवल्क्य ऋषि एक तरफ तो यह आदेश देते हैं कि राजा को शीलवान, न्यायप्रिय और समानताप्रिय होना चाहिये तथा जनता की सेवा ही उसका आदर्श होना चाहिये, दूसरी तरफ वे यह भी कहते हैं कि विधि का उल्लंघन करने वाला कोई भी व्यक्ति, चाहे वह भाई, पुत्र या गुरु ही क्यों न हो, राजा के दण्ड से बच नहीं सकता। विधि और न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ऋषि ने राजा की दण्ड की शक्ति का समर्थन किया है। उन्होंने यद्यपि राजा की विधान-निर्मात्री शक्ति का समर्थन किया है, परन्तु नारद की भाँति उसे वे प्रमुख स्थान नहीं प्रदान करते।<sup>19</sup> याज्ञवल्क्य ऋषि यद्यपि परम्परागत कट्टरवादी पंथ के अनुयायी थे, परन्तु वे उदार दृष्टिकोण के थे। मनु की तरह वे स्त्रियों और शूद्रों के प्रति कठोरता और कट्टरता के समर्थक नहीं थे।<sup>20</sup> याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा निर्धारित दण्ड-व्यवस्था उतनी कठोर नहीं है, जितनी मनु द्वारा निर्धारित व्यवस्था कठोर है। प्रतीत यह होता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति पर कुछ अदृश्य रूप से उदारवादी बौद्ध विचारधारा का प्रभाव है, फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि याज्ञवल्क्य ऋषि ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के पक्ष में थे। याज्ञवल्क्य स्मृति के खण्ड-3 में प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अधिक निकट हैं।<sup>21</sup> याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रमुख टीकाकार हैं विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क और शूलपाणि।

### नारद स्मृति-

नारद स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद की रचना है।<sup>22</sup> डॉ० पी०वी० काणे के अनुसार इसका निर्माण काल ईसा के बाद प्रथम शताब्दी से 300 ई० के बीच माना जा सकता है।<sup>23</sup> भारत की प्राचीन विधि और न्याय व्यवस्था से सम्बन्धित यह ग्रन्थ अपेक्षाकृत अधिक सुसंगत और पढ़तिबद्ध तथा व्यवस्थित है। इसके प्रथम तीन अध्याय न्यायिक प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि की तरह उन्होंने भी साक्ष्य की विधि को ऋण दान अध्याय के अधीन व्यवस्थित किया है। विधि के विषयों का वर्गीकरण और उपवर्गीकरण नारद विश्लेषणात्मक मस्तिष्क का परिचय कराता है। मनु ने जहाँ मूल विधि (सब्सटैन्टिव लॉ) को 18 शीर्षों में विभाजित किया है, वहीं नारद ने इन शीर्षों को उपशीर्षों में विभाजित करके 132 शीर्षक प्रदान किया है।<sup>24</sup> संभवतः नारद ऋषि नेपाल के निवासी थे।<sup>25</sup>

### नारद स्मृति में प्रतिपादित विधिक सिद्धान्त-

नारद स्मृति प्राचीन भारतीय विधि और न्याय-व्यवस्था के नियमों के सम्बन्ध में सबसे अधिक क्रमबद्ध, विस्तृत और पूर्ण ग्रन्थ है। नारद ऋषि अपने युग में हुये

सामाजिक परिवर्तन को साहस के साथ स्वीकार करते हैं और पूर्व की स्मृतियों में अभिव्यक्त मतों से असहमत होने में संकोच भी नहीं करते हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तनों के कारण विधि के नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता को मानते हुये नये नियमों का निर्धारण भी करते हैं।<sup>16</sup> नारद स्मृति के संकलन का काल वह है, जब समस्त आर्यावर्त में शक्तिशाली और समृद्ध मौर्य साम्राज्य स्थापित हो चुका था। एक शक्तिशाली सम्राट के पश्चात् दूसरा शक्तिशाली सम्राट राजगद्दी पर बैठ रहा था। साम्राज्य की सुदृढ़ता और सुरक्षा के लिये यह अनिवार्य था कि सम्राट की विधान-निर्माण की कुछ-न-कुछ शक्ति अवश्य प्राप्त हो। मौर्य सम्राटों ने अनेक अध्यादेश और राज्यादेश जारी भी किये थे। इस तथ्य को नारद ने स्वीकार किया और उसे विधिक मान्यता प्रदान की। डॉ० पारस दीवान का यह अभिमत है कि नारद स्मृति वह पहली स्मृति है, जो न केवल यह प्रतिपादित करती है कि राजा विधान का निर्माण कर सकता है, बल्कि वह यह भी कहती है कि राजा द्वारा बनाया गया विधान देवी विधान और रूढ़िजन्य विधि और न्याय-व्यवस्था पर भी अभिभावी प्रभाव रखता है। नारद ऋषि यह नहीं प्रतिपादित करते हैं कि राजा की विधि-निर्मात्री शक्ति अनन्त है, अपितु उनका यह अभिमत है कि राजा के लिए देवी-विधान की परिधि में रहना अनिवार्य है। केवल कुछ आवश्यक और आपवादिक स्थितियों में राजा देवी विधि और रूढ़ि के विपरीत विधान का निर्माण कर सकता है। एक ओर तो नारद ऋषि यह कहते हैं कि कुछ भी क्यों न हो, राजा की आज्ञा का पालन होना चाहिए, क्योंकि राज्य की सम्पूर्ण विधि और न्याय तथा राजव्यवस्था उसी पर निर्भर है, दूसरी तरफ वे यह भी कहते हैं कि राजा का यह धर्म है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करें और सदैव अपनी प्रजा का पालक बना रहे।<sup>17</sup> नारद, न केवल राज्यादेश को अपितु रूढ़ि को भी देवी विधि और न्याय-व्यवस्था पर अध्यारोही मानते थे। उनके अनुसार रूढ़ि ही सब विवादों का निवारण करती है और देवी विधि और न्याय-व्यवस्था का उन्मूलन करती है। नारद के पूर्व भी स्मृतिकारों ने कहा कि राजा का यह कर्तव्य है कि वह विवादों का निर्णय रूढ़िगत नियमों के अनुसार करें, परन्तु स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा गया है कि रूढ़ि देवी विधि और न्याय-व्यवस्था पर अध्यारोही है।<sup>18</sup> डॉ० पारस दीवान का यह अभिमत है कि अन्य स्मृतिकारों की अपेक्षा नारद अधिक प्रगतिशील ऋषि थे। वे स्त्रियों के अधिकारों के प्रबल समर्थक, उनको मजबूत बनाने वाले और सम्प्रति में उनकी नये अधिकारों को देने के पक्षपोषक थे। उन्होंने यह नियम प्रतिपादित किया है कि कतिपय स्थितियों में स्त्री अपने पति का त्याग करके दूसरा विवाह कर सकती है। शूद्रों के प्रति भी वे उदार थे और सूदखोरी के विरोधी थे।<sup>19</sup>

### सन्दर्भ

1. मनुस्मृति, अध्याय 1, श्लोक (1-4)
2. मनुस्मृति, 1 : 58
3. मनुस्मृति, 1 : 59
4. देखें, मनुस्मृति 1 : 60-63
5. देखें, मनुस्मृति, 1, 35

6. अध्यायों के अनुक्रम में श्लोको की संख्या इस प्रकार है, अर्थात् अध्याय 1-119, अध्याय 2-249, अध्याय 3-286, अध्याय 4-260, अध्याय 5-169, अध्याय 6-97, अध्याय 7-226, अध्याय 8-420, अध्याय 9-336, अध्याय 10-131, अध्याय 11-265 और अध्याय 12-126 = कुल 2684 श्लोक
7. देखें, डॉ० प्रतिभा आर्य, तत्रैव पृ० 6
8. देखें, डॉ० पी०वी०काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 46
9. डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी (1943) पृ० 235-239
10. डॉ० लक्ष्मीकान्त ठाकुर, प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन, पृ० 37
11. डॉ० पारस दीवान, आधुनिक हिन्दू विधि (1992), पृ० 18, एस०टी० देसाई मुल्ला' द हिन्दू लॉ, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 20(1986)
12. मुल्ला द हिन्दू लॉ, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 20 (1986)
13. देखें, मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 14-32
14. डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 18
15. तत्रैव, पृ० 19
16. देखें डॉ० पी०वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 53 (अनु० अर्जुन चौबे काश्यप)
17. डॉ० श्रद्धाकर सुपकार, तत्रैव (1986) पृ० 47
18. डॉ० पारस दीवान, आधुनिक हिन्दू विधि (1992), पृ० 19
19. देखें डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 19
20. डॉ० पी०वी० काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पृ० 180
21. देखें डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 19
22. डॉ० प्रतिभा आर्य, तत्रैव, पृ० 7
23. डॉ० पी०वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 56
24. डॉ० श्रद्धाकर सुपकार, तत्रैव, पृ० 7
25. डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 20
26. देखें, डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी, प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था : मनुस्मृति के विशेष संदर्भ में (1995), पृ० 16
27. डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 20
28. डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 20
29. डॉ० पारस दीवान, तत्रैव, पृ० 20